यदि साहित्य-प्रेमी मेरी इस पुस्तक को अपनाकर उत्साहित करेंगे, तो मैं शीघ्र ही दूसरी भेंट उनकी सेवा में उपस्थित करूँगा।

आगरा।
मिती आश्विन सुदी
१२ सं० १९७५
तदनुसार
ता० १७ अक्तूबर सन्
१९१८ ई०

साहित्यानुरागी—
वृन्दाप्रसाद शुक्ल
मसरी (जालौन)

* श्रीःहरिः *

जीवनोपयोगी बातें

विषय-प्रवेश।

इस बात से कोई अनभिज्ञ नहीं कि, हम जो संसार में उत्पन्न हुए हैं, एक दिन अवश्य ही कराल काल के ग्रास बनेंगे। परन्तु, जीवन के कार्य्य हमारे अधिकार में हैं, केवल मृत्यु नहीं। हम अपने जीवन में जब बड़े-बड़े वीरों, धर्मात्माओं और श्रेष्ठ पुरुषों के नाम सुनते हैं, तब हमारी प्रबल इच्छा होती है कि, हम भी वैसे ही बनें और अनायास ही मुख से निकल पड़ता है कि, जीवन तो इन्हीं का सफल हुआ है—इन्होंने संसार में यश और मान प्राप्त किया है।

इस कारण बड़ी आवश्यकता है कि, हम भी अपने जीवन को सफल बनावें और संसार में यश तथा सम्मान के पात्र बनें।

अस्तु, जीवन की सफलता के लिये प्रथम हमें उन बातों का जानना अत्यावश्यक है, जो जीवन में उपयोगी हों यथा :— शरीर की पवित्रता और पुष्टता प्रभृति ।

हमें तरुणावस्था से ही जीवनोपयोगी बातों के प्रयोग करने का विचार रखना चाहिये ।

यह बातें इतनी हैं कि, छोटीसी पुस्तक में उनका पूर्णतः उल्लेख करना प्रायः असम्भव ही है। इस कारण उनको संक्षेप में ही लिखा जाता है और वे जीवनोपयोगी बातें ३ अध्यायों में विभाजित की गयी हैं—(१) चाल-चलन (२) सुशीलता और (३) स्वस्थता अथवा स्वच्छता ।

अब इन अध्यायों से सम्बन्ध रखने वाली बातों का क्रमानुसार उल्लेख किया जाता है।
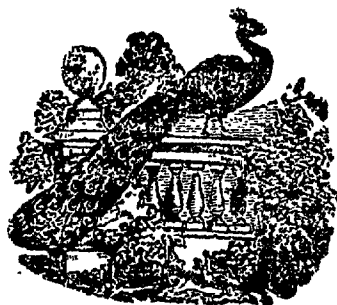
१—मनुष्यता कैसे प्राप्त होती है।

बहुत से बालक तथा मनुष्य भी बहुधा ऐसा विचार करते हैं कि, शिष्टाचार का प्रभाव बहुत कम होता है और जो कुछ वे करते हैं सब ठीक है, तथा जिस ढङ्ग से वे करते हैं वह भी ठीक है। यदि उनके शब्द बुद्धिमता से भरे हुए भी हों, तोभी उनके कहने का अभि-प्राय ठीक नहीं और ऐसा विचार करना भी उनकी भूल है। हमारे शब्द गम्भीर होंगे और उनका प्रभाव भी अधिक होगा यदि वे दया, सिधाई और मोहते हुए ढँग से कहे जायेंगे। हमारे कार्य्य भी मनुष्यों पर उत्तम और अटल प्रभाव डाल सकते हैं यदि वे विचार-युक्त होंगे। ठीक-ठीक विचार करने वाले पुरुषों की भावनाओं को कठोर शब्द हानि पहुँचाते हैं।

हमें इस बात का सर्वदा ध्यान रखना चाहिये कि, जो कुछ हम कहते हैं, उसे स्वयं करते हैं या नहीं और हमारे शब्दों का प्रभाव तभी अधिक होगा जब वे हमारे कार्य्यों से सम्बन्ध रखते हों। जब हमारी दशा इतनी सुधर जाय कि, अज्ञात दशा में भी उसमें कोई त्रुटि न आ सके, तभी हम अपने को मनुष्य

कहने योग्य होंगे और तभी हम उपदेशक बन सकते हैं। एक शब्द में हमारा कहना ही करना हो।

२—स्वास्थ्य के अनुसार ही मस्तिष्क होता है।

हम जानते हैं कि, हमारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं। प्रतिक्षण स्वास्थ्य पर आघात करने वाली छोटी-छोटी घटनायें हुआ ही करती हैं। इस कारण, हमको उन बातों का पूरा उद्योग करना चाहिये, जिनसे स्वास्थ्य का पूर्ण सुधार हो। यदि इस समय सौभाग्य से, हम पूर्ण स्वस्थ हैं तो हमारी दृष्टि सर्वदा इस विषय में होनी चाहिये कि, हम स्वास्थ्य को क्रमशः किसी अपने दोष के कारण खो तो नहीं रहे हैं। यदि हमने अभी तक पूर्ण स्वास्थ्य लाभ नहीं किया तो हमारे जीवन का उद्देश, इसके पूर्व कि हम पूर्ण स्वास्थ्य पा जावें, और कुछ न होना चाहिये। उन बातों का उल्लेख समयानुकूल होगा जो स्वास्थ्य की सहायक हैं।

३—चाल-चलन।

हम कभी-कभी अपने शरीर के विचार करने वाले भाग को, जो कार्य्यों के करने का मार्ग दिखलाता है, मस्तिष्क कहते हैं और कभी-कभी अन्तःकरण। परन्तु मस्तिष्क अथवा अन्तःकरण के प्रभावों से प्रकट हुए कार्य्यों को एक शब्द में—चाल-चलन कह सकते हैं।

चाल-चलन हमारी स्थिति का खुला हुआ चिट्ठा है। इसमें

और मस्तिष्क में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। तात्पर्य्य यह कि, चाल-चलन मस्तिष्क से ही उत्पन्न होता है। इस कारण अमुक मनुष्य के चाल-चलन को देखकर हम कह सकते हैं कि, उसका कैसा मस्तिष्क है। मस्तिष्क हमें भले-बुरे का अन्तर दिखलाता है और यदि अन्तःकरण से काम लिया जाय तो हमारा सदैव यह विचार होगा कि, हम सारे काम ठीक-ही-ठीक करें। अच्छे-अच्छे उदाहरणों को देख, उनके अनुसार चलना, अपने आचरण को अच्छा बनाना है। जो चाल-चलन की रक्षा नहीं करते, वे किसी बात की रक्षा नहीं कर सकते; क्योंकि:—

वृत्त यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

अर्थात् चाल-चलन की, उपाय करके, रक्षा करनी चाहिये, धन तो आता-जाता ही रहता है। धन-रहित हो जाने पर तो मनुष्य निर्धन ही होगा, परन्तु चाल-चलन के बिगड़ जाने पर मनुष्य मृतक समान है।

४—मित्रता।

भले प्रकार से समझ-बूझ कर की गयी मित्रता, सब सदाचारों से उत्तम सदाचार है और संसार में मित्रता से बढ़कर कोई वस्तु नहीं। एक अच्छा मित्र हमको ठीक-ठीक कार्य्य करने में उतनी ही सहायता देता है, जितनी कि हमें आवश्यक है; इसके विपरीत, बुरा मित्र हमें बुरे कार्य्य करने में उतना

ही कारण बनता है, जितना कि हमारे जीवन को दुखप्रद बनाने के लिये भले प्रकार पर्याप्त है।

इस कारण, हमें देख-भालकर मित्रता करनी चाहिये तथा ऐसे पुरुष से मित्रता करनी चाहिये, जो हमें उच्च आदर्श बनाने में सहायक हो, न कि नीचता की ओर खींच ले जाने में।

मित्रता एक उत्तम नदी के समान है, जो कि जैसे-जैसे बहती जाती है, वैसे-ही-वैसे चौड़ी होती जाती है और बलवती होकर अन्त में और भी अधिक चौड़ी हो जाती है। इसी प्रकार अच्छे मित्रों की मित्रता प्रतिदिन उत्तरोत्तर वृद्धि पाती है!

प्रत्येक मनुष्य का चाल-चलन उसके मित्रों को देखकर जान लिया जाता है। यदि मित्र भले हैं, तो वह भी भला है और यदि मित्र बुरे हैं, तो उसके बुरे होने में भी कोई सन्देह नहीं रह जाता।

५—स्वभाव।

प्रकृति माता का दूसरा चित्र प्रत्येक मनुष्य में उसके स्वभाव के रूप में विद्यमान है। अच्छे-अच्छे स्वभाव हमें बचपन ही में डाल लेने चाहिये। अधिक अवस्था प्राप्त कर लेने पर बुरे स्वभाव को छोड़ देना प्रायः असम्भव ही हो जाता है। जिस प्रकार कच्चे घड़े पर बुरा या भला रङ्ग चढ़ा दिया जाय, और पक जाने पर उसका प्रकाश बना रहे, तो वह सदैव के लिये

चढ़ गया ; उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव की भी दशा है। अर्थात् बचपन में बुरे अथवा भले स्वभाव बड़ी सरलता से सीखे तथा छोड़े जा सकते हैं।

प्रत्येक छोटा कार्य भी, चाहे वह भला हो या बुरा, किसी-न-किसी स्वभाव का प्रारम्भ होता है। और बार-बार उसी कार्य्य को करने से वही स्वभाव बन जाता है। तथा इसी प्रकार डाले हुए स्वभाव हमारे जीवन को भला या बुरा बनाने में सहायक होंगे। होरेसमैन का वाक्य है कि, स्वभाव उस रस्से के तुल्य है, जिसका कि एक-एक धागा प्रतिदिवस बुना जाय, और अन्त में वह इतना दृढ़ हो जाता है कि, हम उसे तोड़ नहीं सकते।

उपरोक्त बातों को स्मरण रखते हुए समझ लेना चाहिये कि, यदि तुममें कोई बुरा स्वभाव आ गया है, तो आज ही से उसे क्रमशः छोड़ने लगो ; क्योंकि एकदम छोड़ देने से वह दुःखप्रद प्रतीत होगा। और भला स्वभाव उसी प्रकार क्रमशः ग्रहण करने लगो।

६—समय का उपयोग।

समय धन की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् है अथवा यों कहिये कि, समय अमूल्य है। इस कारण धन की अपेक्षा समय का व्यतीत करना अधिक कठिन है। यदि एक बार भी आपको समय का उचित उपयोग आ गया, तो आपके पास एक अति उत्तम गुण आ गया। कितनी बड़ी बात है कि, तुम किसी

मनुष्य पर कोई कार्य्य छोड़ दो और वह वादा करे कि, वह उसे नियत समय तक कर लेगा और तुमको उस पर विश्वास हो जाये कि, वह उसे अवश्य पूरा कर लेगा।

स्कूल हो अथवा घर, प्रत्येक कार्य्य समयानुसार करो। समय को कार्य्यों के अनुसार बाँट लो और उसका एक ढाँचा बनाकर तैयार कर लो। यदि एक दिन भी ऐसा करके देखोगे तो उसका मूल्य समझ जाओगे ; क्योंकि उस दिन तुम देखोगे कि प्रति दिन की अपेक्षा कितना अधिक कार्य्य हो गया ! और कितनी बड़ी सरलता से।

स्मरण रक्खो कि, समय का उपयोग ही कार्य की जान है। जो समय का उपयोग करना नहीं जानते, वे समस्त दिन कार्य्य करते हुए भी अपने कार्य्य पूर्ण नहीं कर सकते। आलसी मनुष्य समय को योंही बैठे-बैठे व्यतीत कर देते हैं और दुःख भोगते हैं।

७—आज्ञा-पालन।

जब बादशाह सॉल (Saul) ने परमात्मा की एक आज्ञा को नहीं माना था, तब सेमुअल (Samual) ने कहा था कि, "आत्मबलि की अपेक्षा आज्ञा-पालन अच्छा है।" हमको अपने माता-पिता की आज्ञा माननी चाहिये। जो मनुष्य हमसे बड़े हैं, जो हमारे शुभ कार्य्यों के मार्ग-निर्माता हैं, जो हमारी सहायता करते हैं, और जो हमारे गुरु अथवा अध्यापक हैं,

उनकी आज्ञा मानना हमारा परम कर्त्तव्य है। बड़-बड़ाते हुए तथा उदास मन से अथवा किसी के दबाव के कारण, आज्ञा मानने की अपेक्षा प्रसन्न चित्त होकर और बिना प्रश्न किये आज्ञा मानना एक अति ही हितकर और मूल्यवान् गुण है।

यदि तुम बड़े होकर उच्च पद के अधिकारी बनना चाहते हो और चाहते हो कि लोग तुम्हारी आज्ञा मानें, तो सब से उत्तम यही कर्त्तव्य है कि, प्रसन्न चित्त होकर आज्ञा-पालन करना सीखो। इमरसन का वाक्य है कि—"आज्ञा देने का अधिकार उसी को है, जो स्वयं आज्ञा-पालन करना जानता हो।"

इस कारण, जो मनुष्य आज्ञा-पालन करना नहीं जानता, वह आज्ञा देने का अधिकारी हो ही नहीं सकता और यदि हो भी जाय, तो वह भली भाँति उस पद पर कार्य्य न चला सकेगा। किन्तु आज्ञा-पालन में ध्यान रखना चाहिये कि, वे आज्ञायें, जिन्हें हम पालन करेंगे, अच्छी हों न कि बुरी।

८—सत्यभाषण।

यदि हमें किसी व्यक्ति के विषय में यह विश्वास है कि, वह जो कहेगा सो ही करेगा, तो वास्तव में वह एक अनुकरणीय पुरुष रत्न है। यदि हमें मालूम पड़ जाय कि, उसमें सत्यता की कुछ भी कमी है, तो हम उसे ऐसा कदापि न कहेंगे। वादे को कभी न तोड़ो, चाहे उसके रखने में तुम्हें बहुत सी अड़चनें भी क्यों न आ पड़ें।

सत्य बोलने वाला कभी दुःख न भोगेगा। असत्य भाषण करने वाले का लोग विश्वास नहीं करते और न उसका संसार में मान होता है।

कहानी कहने वाले तथा बकवादी पुरुष सदैव असत्यभाषण किया करते हैं और लोगों को उन पर विश्वास भी कम होता है। एक बार यदि असत्यभाषण कर दिया जाय, तो उसको सत्य प्रमाणित करने के हेतु, सैकड़ों बार असत्यभाषण करना पड़ता है।

सत्यवादी बनने का सबसे उत्तम उपाय तो कम बोलना है। स्मरण रक्खो कि—

My tongue within my lips I'll rein,
For who talks much, talks in vain.

अर्थात् मैं अपनी जीभ अपने ओठों में ही रोके रहूँगा, क्योंकि जो अधिक बोलते हैं वे व्यर्थ बकवादी होते हैं।

जार्ज हर्बर्ट स्पेन्सर का वाक्य है कि—"सच्चे बनने का साहस करो, झूठ बोलने की कोई आवश्यकता नहीं।" झूठ बोलने के लिये तो सत्य बोलने की अपेक्षा अधिक साहस की आवश्यकता है। फिर हम अपने साहस का दुरुपयोग क्यों करें?

यदि असत्यभाषण करने का अधिक स्वभाव पड़ गया हो, तो इस प्रकार साधारण ही छोड़ सकते हो कि, प्रतिदिन की अपनी असत्य बातें, गिनते जाओ और प्रतिदिन एक-एक कम

करके असत्य बोलना छोड़ दो । स्मरण रक्खो कि "सत्यमेव जयते नान्टतम्" अर्थात् सत्य ही की जय होती है, झूठ की नहीं ।

९—सत्य व्यवहार ।

जो कुछ कहो उसको पूरा करो । जिस वस्तु को तुम पुनः न लौटा सको, उसको किसी से न लो; क्योंकि न तो यह तुम्हारे प्रतिवेशी (पड़ोसी) के लिये भला प्रतीत होगा और न इसे ईमान्दारी कहेंगे ।

ईमान्दारी और सत्यता में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । संसार में ईमान्दारी से बड़े-बड़े कार्य्य हो सकते हैं । अँगरेज़ी में एक कहावत है कि—"Honesty is the best policy." अर्थात् ईमान्दारी कार्य्य करने का सब से उत्तम ढँग है ; शेक्स-पियर ने कहा है कि—"जहाँ तक हो सके, न तो किसी से उधार लो और न किसी को उधार दो । क्योंकि ले करके फिर दिया जाय, तो ऐसी दशा में ईमान्दारी की रक्षा बड़ी कठिनता से हो सकती है ।

कभी किसी को धोका देने का प्रयत्न न करो, किन्तु अपने सब कार्य्य में सच्चे और ईमान्दार बनो । पोप ने कहा है— "चरित्र शील मनुष्य सृष्टि का एक अच्छा दृष्टान्त है ।"

१०—उद्योग और साहस ।

बेञ्जमिन फ्रांकलिन को जब कोई कार्य कठिन दिखाई देता, तो वह कहता—"मैं इसका कोई उपाय ढूँढ़ूँगा या स्वयम्

बनाऊँगा"—और ऐसा कहकर वह दृढ़ता के साथ कठिन-से-कठिन कार्य्य को पूरा कर लेता था। क्योंकि जब किसी कार्य्य के करने का उपाय मिल जाता है, तब उसमें अवश्य सफलता प्राप्त होती है। यदि तुम पहले-पहल उसमें सफल न हो, तो साहस के साथ फिर उद्योग करो। बार-बार उद्योग करने से अवश्य सफलता होगी। देखिये, साहस के लिये नीति क्या कहती है :—

धनस्तीति च वाणिज्यं किञ्चिदस्तीति कर्षणम्।
सेवा न किञ्चिदस्तीति नाहमस्मीति साहसम्॥

अर्थ—यदि धन पास हो तो व्योपार करना चाहिये; यदि थोड़ा धन हो तो खेती करना चाहिये; यदि कुछ पास न हो तो नौकरी करना चाहिये, परन्तु साहस को इस प्रकार करना चाहिये, मानों मैं ही नहीं हूँ।

साहस और उद्योग से यदि सफलता न भी प्राप्त हो, तो भी सफलता के अधिकारी बनो; परन्तु बुरे-बुरे उद्योग करने की बात हृदय में न आने दो। कार्य्य में उसका परिणाम भी साथ है, और जिस उद्देश से हम उसे कर रहे हैं, यदि वह पूरा न हो तो भी हमारे चरित्र का सुधार होता है। क्योंकि कार्य करने में हमने जो उपाय किया है, वह उपाय ही हमारे चरित्र-सुधार में सहायक होगा। उद्योग करते रहना हमारे लिये सर्वदा अच्छा है। "मैं इसे नहीं कर सकता" ऐसा कभी न कहो। तुम्हारा उद्देश यह होना चाहिये—"मैं इसे अवश्य कर लूँगा।"

यदि कोई कार्य तुम्हारे करने योग्य है, तो उसमें पूरा उद्योग करो, क्योंकि ऐसा करना तुम्हारा धर्म है। जो कुछ कार्य्य तुम्हारे हाथों में पड़ जाय, उसे प्रसन्न चित्त होकर करो।

धन, धर्म, सत्सङ्गति इत्यादि सब बातें साहस, उद्योग और परिश्रम से ही प्राप्त होती हैं। दृढ़ता और नियम से कार्य्य करना चाहिये, क्योंकि लापरवाही और अनियमता से कार्य्य करने वाला कभी उच्च पद पर नहीं पहुँच सकता।

११—धैर्य्य और शान्ति।

नवे वयसि यः शान्तः स शान्त इति कथ्यते।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते॥

अर्थ—जो नयी अवस्था यानी युवावस्था में शान्त होते हैं, वे ही शान्त कहे जाते हैं। क्योंकि वीर्य्य के क्षीण हो जाने पर शान्त कौन नहीं हो जाता। इस कारण नवयुवको! तुमको शान्ति धारण करना चाहिये। जब तुम्हें क्रोध आ जावे, तो अपने प्रतिवादी को उत्तर देने के पहले दश तक गिन जाओ। किसी से ईर्षा मत रक्खो। यदि तुम्हें यह जान पड़े कि, तुम्हारे साथ अनुचित व्यवहार किया गया है, तो उसे भूल जाने का प्रयत्न करो या उसे अपराधी की भूल स्वीकार कर लो। परन्तु ईर्षा अथवा वैर का अंकुर हृदय में न जमने दो।

जब तुम किसी कष्ट अथवा रोग से पीड़ित हो, तो उस पीड़ा को धैर्य्य धारण कर सहो। इस बात का ध्यान रक्खो कि,

करेंगे। जो पुरुष तुम्हारे सम्मान करने योग्य हैं, उनका सम्मान करने में कभी न भूलो; क्योंकि यह स्वप्रतिष्ठा की प्रथम सीढ़ी है। दूसरों को प्रसन्न करने वाली चटक-मटक वाली पोशाक बनाने में ध्यान न दो; किन्तु तुम्हारी पोशाक साधारण और शान्त हो। तुम्हारे कार्य्य करने के सब ढङ्ग दोष-रहित और पवित्र हों। सड़क पर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कभी न बोलो। गोल्ड स्मिथ ने कहा है—"ज़ोर-ज़ोर से और शीघ्रता के साथ बोलने से मस्तिष्क की निर्बलता प्रकट होती है।" उस अशासनीय हथियार यानी जीभ को किसी के प्रति बुरा कहने, झूठ बोलने और अपवाद करने से रोको। नीति का वाक्य—

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवाद सस्येभ्यो गां चरन्ती निवारय:॥

अर्थ—यदि तुम एक ही कर्म द्वारा संसार को वश में करना चाहते हो तो दूसरों की बुराई रूपी घास को चरने वाली गऊ यानी जीभ तथा वाणी को वश में कर लो।

सब से प्रथम, अपने साथी अच्छे बनाओ। एक लेटिन-लेखक का कहना है कि, मनुष्य अपने साथियों द्वारा जाना जाता है। किसी को बुराई की ओर झुकाने का प्रयत्न न करो; अपने से निर्बलों की सहायता करने का सुअवसर हाथ से न जाने दो; क़ानूनों को मानते हुए एक सभ्य नागरिक बनो, अपने प्रत्येक कार्य में सत्य हृदय और न्यायी बनने का परिचय दो तथा समाज के लिये आदर्श बनो; और ठीक बात को

ओर होने में, लज्जा को पास न फटकने दो। तब तुम स्वप्रतिष्ठा के योग्य हो सकते हो।

१४—न्याय।

यदि तुम उदार बनने के इच्छुक हो, तो पहिले न्यायी बनो। किसी की तुम्हारे प्रति की हुई दया अथवा अहसान भूल जाना बहुत बुरी बात है, और जो कि न्याय के बिलकुल विपरीत है। इस बात को भली भाँति समझ लो कि, दूसरों के धन से उदार बनना तो सहज है परन्तु अपने से नहीं। यदि हम किसी के उपकार का बदला चुका दें तो इसमें न्याय अवश्य है, परन्तु उसे उदारता नहीं कह सकते। क्योंकि उदारता का अर्थ बिना बदला लेने की इच्छा के सहायता करना है। यदि हम उपकार का बदला न दें तो मनुष्य धर्म से पतित हो जायेंगे। क्योंकि—

कृते प्रत्युपकारोहि वणिग्धर्मो न साधुता।
तत्रापि ये न कुर्वन्ति पशवस्ते न मानुषः॥

अर्थात्—उपकार का बदला चुकाना ईमान्दारी है, न कि साधुता, और जो बदला भी नहीं चुकाते वे मनुष्य नहीं, पशु हैं।

यदि तुम्हें जान पड़े कि, तुम्हारे साथ अन्याय किया गया है, तोभी उसका बदला न्याय से दो। यद्यपि तुम इस बात को समझ गये कि, तुम्हारे साथ अन्याय किया गया, परन्तु इसका कोई कारण नहीं कि, तुम भी अन्याय करो। किसी से कुछ ले

लेने का उद्योग करने से, कुछ दे देने का उद्योग करना अच्छा है। क्योंकि, जब हम इस बात का प्रयत्न करें कि, हम ठीक और न्यायी बनें तो हमको न्याय के साथ दया का आवेश करना भी उचित है। परन्तु प्रत्येक स्थान पर नहीं, केवल उन्हीं कार्य्यों में, जिनमें कि, परिणाम अच्छा जान पड़े। बिना न्याय के कोई कार्य्य न करना चाहिये। क्योंकि न्याय के बिना कार्य्य कभी ठीक नहीं हो सकता, और यदि हो भी जाय तो अन्त में उसका परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता।

१५—मितव्ययता।

यह तो प्रायः सब लोग जानते हैं कि, हमारा यह एक बड़ा ही आवश्यक कर्त्तव्य है कि, कठिन समय (दुर्दिन) के लिये प्रतिमास अथवा प्रति सप्ताह कुछ-न-कुछ बचाते रहें। यदि भाग्यवश बीमारियों से बचे रहें और ऐसे कष्ट और परीक्षा के समय, हम पर न पड़ते हों, जैसे कि प्रायः लोगों पर आ पड़ते हैं, तोभी वृद्धावस्था निस्सन्देह आवेगी; जब कि हम इतने परिश्रम से कार्य न कर सकेंगे, जैसे कि अभी कर रहे हैं। उस वृद्धावस्था के लिये, जहाँ तक हो सके, हमको पराये भरोसे पर न रहना चाहिये। बीमारी अथवा ख़र्च के समय के लिये अपनी सामर्थ्य भर अवश्य बचा लेना चाहिये।

हमारी यह बड़ी भारी भूल होगी, यदि हम उतना ही ख़र्च कर देंगे, जितना कि पैदा करें। हमें आयके अनुसार व्यय

करना चाहिये। मानलो, किसी मनुष्य की आय ५० रुपया मासिक है, तो उसका खर्च किसी मास में ४८ रु० १५ आ० से अधिक न होना चाहिये। इस तरह खर्च करने वाला मनुष्य कभी दुःखी न होगा। यदि हमें बचे हुए धन की, किसी कारण वश आवश्यकता न पड़े, तो हम उस बचे हुए धन से दूसरों की, जो आपत्ति में हैं, सहायता कर सकते हैं।

मितव्यय करके धन बचाने का स्वभाव हमको युवावस्था में ही डाल लेनी चाहिये। और, फिर तुमको कितना आश्चर्य होगा, जब तुम प्रति सप्ताह थोड़ा-थोड़ा बचाकर कुछ वर्षों में अपनी बचत का हिसाब लगाओगे।

१६—इच्छा-शक्ति।

इच्छा-शक्ति वह अद्भुत शक्ति है, जिसके द्वारा मनुष्य बिना जाने हुए ही दूसरों पर अधिकार किये रहता है। जो मनुष्य स्वयं अपने को वश में नहीं रख सकता अथवा उसको इच्छा-शक्ति के उपयोग करने की शिक्षा नहीं मिली है, वह कभी भी दूसरों पर अधिकार नहीं कर सकता। अथवा इसको यों कह सकते हैं और जैसा कि हम पहले भी लिख आये हैं कि, जो आज्ञा-पालन करना नहीं जानता, वह आज्ञा-पालन कराने के योग्य नहीं है।

इच्छा-शक्ति के भली भाँति व्यवहार होने का परिणाम, उस समय देखा जा सकता है, जब कि एक मनुष्य इच्छा-शक्ति

को दृढ़ करके मन में कहे—"मुझे कोई पराजित नहीं कर सकता। क्योंकि ऐसा कहकर बहुतों ने अपने से बलवान् वैरियों पर विजय पाई है। बहुत से लोग केवल उजड्डपन से ही कार्य करने लग जाते हैं। उन्होंने 'नहीं' कहना कभी सीखा ही नहीं है और वे जैसी हवा देखते हैं वैसी ही कार्य्य-प्रणाली प्रारम्भ कर देते हैं। उन लोगों में वास्तव में इच्छा-शक्ति का अभाव है और वे कभी-कभी एक अधिपति (Leader) के सहारे पर चलते हैं, तथा बहुधा बुरे अगुआ के चक्कर में आ जाते हैं। परन्तु, जब वे अपने ही उद्योगों पर छोड़ दिये जाते हैं, तो इस प्रकार "किं कर्त्तव्य विमूढ़" हो जाते हैं, जैसे बिना पतवार की नाव।

कितनी अच्छी बात है कि, कोई मनुष्य आपत्ति के समय में अति शीघ्र और भले प्रकार विचार करने योग्य हो। इस समय के कर्त्तव्य-पालन की अयोग्यता प्रायः बड़ी हानिप्रद होती है। इस लिये, ठीक-ठीक और शीघ्र ही विचार करने का स्वभाव डालो। फिर तुम तो कठिन-से-कठिन कार्य्य में हाथ डाल सकते हो। अपने शुभ विचार को चट्टान के समान दृढ़ कर लो, जिससे तुम्हारे उस उत्तम विचार को कोई न बदल सके।

इच्छा-शक्ति के बल से ही मिस्मेराईज़र, लोगों को शीघ्र ही मूर्छित कर देते हैं।

१७—उत्साह।

उन्नति का मूलमन्त्र उत्साह ही है। यदि कोई कार्य्य

उत्साह से आरम्भ किया जाय, तो उसे आधा उसी समय हो गया समझ लो। यदि वही कार्य कच्चे हृदय से किया जाय, तो प्रारम्भ ही से उसे अपूर्ण समझ लो। जब तक कि एक उत्साही पुरुष अपने विचारे हुए कार्य्य को समाप्त होने तक पहुँचा देगा, एक निरुत्साही कमज़ोर हृदय वाला, उसमें आने वाली अड़चनों और कष्टों का ही हिसाब लगाता रहेगा।

जब हमें किसी कार्य्य के करने का उत्साह होता है, तब उस कार्य्य के करने में आनन्द भी खूब आता है। इमरसन ने कहा है कि—"बिना उत्साह कोई बड़ा कार्य्य कभी भी नहीं हुआ।"

बिना उत्साह कोई देश कभी उन्नति को प्राप्त नहीं कर सकता; बिना उत्साह कोई धर्मात्मा नहीं बन सकता; बिना उत्साह जीवन में सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इस कारण, नवयुवाओ! प्रत्येक बड़ा अथवा छोटा कार्य्य भी, उत्साही बन कर करो।

१८—परिश्रम।

कभी-कभी लोग परिश्रम के विषय में बड़े-बड़े विलक्षण विचार हृदय में लाते हैं। कोई-कोई तो इसे दण्ड बतलाते हैं और कोई-कोई इसे आवश्यक बलाय कहकर मन समझा लेते हैं। इन दोनों विचारों से यह साबित होता है कि, सुखमय जीवन उसे कहेंगे कि, सदा आराम से लेटे रहें तथा खेल-कूद-

कर अपने को ताज़ा कर लें। अर्थात् बिना किसी प्रकार का कष्ट उठाये दिन बितावें। परन्तु, यह केवल आलसियों का स्वप्न है। हाथ और मस्तिष्क कार्य्य करने के लिये बनाये गये हैं और कार्य्य करना जीवन का उद्देश है। श्रीभगवान् कृष्ण ने गीता में कार्य्य करने का महत्व भले प्रकार दिखाया है। ऐसे आलसियों को सावधान हो जाना चाहिये। परमात्मा ने प्रत्येक को आवश्यकतानुसार बल दिया है और हमारा यह कर्त्तव्य है कि,उस बल को खो न बैठें,परन्तु बिना परिश्रम किये हम उसे अवश्य खो बैठेंगे। और, तब जीवन दुःख-मय हो जायगा।

परिश्रम कई प्रकार के होते हैं और उनके करने के ढँग भी जुदे-जुदे हैं। परन्तु, अच्छा हो, यदि इस बात को सर्वदा स्मरण रक्खो कि, परिश्रम का फल अवश्य मिलता है। संसार में परिश्रम करके जीवन-निर्वाह करना सब से अधिक आदरणीय है। जो परिश्रम नहीं करता, उसे खाना भी न चाहिये। ईमान्दारी से कार्य्य करना, चाहे वह बल से सम्बन्ध रखता हो चाहे मस्तिष्क से, कोई लज्जा की बात नहीं। बिना परिश्रम सुख की सामग्री उपस्थित होते हुए भी सुख नहीं होता; रात्रि को नींद नहीं आती; और परिश्रम न करने वाला मनुष्य बीमारियों का अड्डा बन जाता है। शरीर अङ्ग-भङ्ग हो जाता है तथा मृत्यु भी उसकी शीघ्र ही राह देखने लगती है।

१६—स्वदेशानुराग।

अपने देश के वीर पुरुषों के नाम हमारे कानों में गूँजते हैं

और उनके कार्य्य हम चार मनुष्यों के पास बैठकर तुरन्त वर्णन करने लगते हैं। ऐसे प्यारे देश को हमें आदर की दृष्टि से देखना चाहिये। जिस देश की मिट्टी से हम उत्पन्न हुए और पले हैं, और अन्त को जिसकी मिट्टी में हम मिल जायेंगे, उस प्यारे देश से हमें अनुराग होना चाहिये।

प्रत्येक देश में उसकी सेवा करने को भले-भले मनुष्य और अच्छी-अच्छी स्त्रियाँ होनी चाहिये। इस कारण, बालिकाओ! तुम अच्छी-अच्छी स्त्रियाँ बनो, और अपनी पूर्ण योग्यता से सदा अच्छे-ही-अच्छे कार्य्य किया करो तथा पवित्र जीवन व्यतीत कर अपने पड़ोस वालों पर भी अपना प्रभाव डालो। बालको! तुम केवल अच्छे आदमी ही नहीं, किन्तु अच्छे कार्य्य कर्त्ता बनो; क्योंकि देश को पढ़े-लिखे पण्डितों और उच्च पदाधिकारियों की अपेक्षा, कार्य्य करने वालों की अधिक आवश्यकता है; और तुम्हारे ऊपर ही देश का भविष्य निर्भर है। अपने देश के लिये कुछ उठा न रक्खो। जब तुम सब मिलकर तन, मन और धन लगाकर देशोन्नति करोगे, तब तुम्हारी सभ्य संसार में गिनती होगी।

स्वदेशानुराग का अर्थ यह कभी मत समझ बैठो कि, हम विदेशियों को घृणा करें अथवा उनके रहने के तरीके, कार्य्य और देश-सुधार का ढँग न ग्रहण कर, केवल अपने को ही उत्तम समझते रहें। स्वदेशानुरागियों को देश से सच्ची प्रीति और उन्नति की इच्छा सदैव इस बात को ललचाती है कि, वे

विदेशी भाषायें पढ़ें, और अपने देश से अन्य देशों में जाकर विदेशियों से मेल-जोल बढ़ावें; उनके रीति-रिवाजों से परिचित हों और अपने परिश्रम का फल स्वदेश में लावें। यदि हमें विदेशियों से कोई शिक्षा मिलती है, तो उनको आदर की दृष्टि से देखना और उनसे शिक्षा ग्रहण करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

स्वदेशानुराग एक वृक्ष के समान है, जिसकी जड़ें हमारे हृदय में गहरी गड़ जानी चाहिये। जब यह वृक्ष फूलता-फलता है, तब उसके फल-फूल हमारे तथा आगे आने वाली सन्तान के लिये अति सुखप्रद होते हैं और आत्म-सम्मान के कारण बनते हैं।

२०—सुशीलता ।

इस शब्द का अर्थ बड़े महत्व का है। सब से मित्र भाव रखना, अच्छे आचरण, नम्रता, दया, दान देना तथा दूसरों के कष्टों को निवारण करना, ये सब बातें सुशीलता ही में हैं।

बहादुर और चतुर मनुष्य सर्वदा सुशील होते हैं। शील मनुष्य का परम धन है। देखिये नीति क्या कहती है :—

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनम्मतिः।
परलोके धनं धर्मं शीलं सर्वत्र वै धनम् ॥

अर्थ—परदेश में विद्या धन है, कार्य्यों में मति धन है, परलोक में धर्म ही धन है। परन्तु शील सब जगह धन है।

वरं विन्ध्याटव्या मनशन तृषार्त्तस्य मरणम्,
वरं सर्पाकीर्णे तृणपिहित कूपे निपतनम्।
वरं गर्तावर्ते गहन जल मध्ये विलयनम्,
न शीलात् विभ्रंशो भवतु कुलजस्य श्रुतवतः ॥

अर्थात्—एक उच्च कुल में पैदा हुए मनुष्य के लिये, यह अच्छा है कि, वह विन्ध्याचल पर्वतों में जाकर भूख और प्यास

से मर जाय ; साँप और तिनकों से भरे हुए कुएँ में गिर पड़े ; तालाब के गहरे जल में जा करके विलीन हो जाय ; परन्तु उसके लिये यह अच्छा नहीं है कि, वह शील को छोड़ दे।

२१—घर।

आचरण सुधारने का सब से अच्छा स्थान घर है। यह विचार करना बड़ी भारी भूल है कि, अब तो तुम घर पर हो चाहे लड़ो, चाहे गँवारपन से बातें करो और चाहे मूर्खता के कार्य्य करो। घर एक ऐसा उत्तम स्थान है कि, जहाँ तुम दया, प्रेम, भक्ति और श्रद्धा तथा सब ही उत्तमोत्तम बातें सीख सकती हो, जो कि जीवन को सुख-मय बनाने में सहायक होंगी। अच्छे-अच्छे आचरण केवल चार आदमियों में ही बैठकर न करने चाहिये, किन्तु सदैव उन पर ध्यान रखना चाहिये। सुशीलता सीखने का स्थान घर ही है।

घर पर, जहाँ तक हो सके, माता-पिता को अपने लिये कष्ट न सहने दो। किवाड़ों को सदैव धीरे से बन्द करो। उनको ज़ोर से बन्द करना बड़ी मूर्खता है। और ऐसा करने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। तुम जैसे नम्र अपने मित्रों के साथ बनना चाहती हो, वैसे नम्र प्रथम अपने भाई-बहिनों के साथ बनो। तब तुम नम्रता को अवश्य ग्रहण कर लोगी। माता-पिता को सर्वदा सम्मान-सूचक शब्दों में सम्बोधन करो, जिससे कि तुम बड़ों की प्रतिष्ठा करना सीख जाओगी और फिर समाज में तुम्हें कोई बुरा न कह सकेगा।

२२—स्कूल (पाठशाला)

स्कूल में अपने गुरु का सम्मान करो। सदैव गुरु की आज्ञा मानो। यदि तुम स्वप्रतिष्ठा जानते हो तो पर-प्रतिष्ठा भी जान सकोगे, क्योंकि स्वप्रतिष्ठा तुम्हें स्कूल में मैले कपड़े और अस्वच्छता से आने से रोकेगी। सहपाठियों के साथ भ्रातृवत् व्यवहार करो और सदा उनके साथ प्रेम से मिलो। उनसे नम्रता के साथ बात-चीत किया करो। नम्र शब्दों के बोलने में यद्यपि कुछ व्यय नहीं होता, परन्तु उनमें ऐसा प्रभाव है कि, वे बड़े-बड़े कार्य्य को सरलता से पूरा कर लेते हैं।

स्कूल की पुस्तकों को, उनके ऊपर इधर-उधर लिखकर मत बिगाड़ दो और न स्कूल का सामान नष्ट करो। जब पुस्तक पढ़ रहे हो, खासकर जब कि दूसरे की पुस्तक हो, तब उसके पृष्ठों को तोड़कर मत रक्खो, जैसा कि प्रायः बालक किया करते हैं— झट आधा पृष्ठ लौट दिया और दूसरा काम करने लगे। इससे पुस्तक शीघ्र ही फट जाती है और उनका लापरवाही का स्वभाव पड़ जाता है। इसके लिये कोई डोरा अथवा पतला काग़ज़ रक्खो जो बुक-मार्क का काम दे।

स्कूल में अथवा किसी दूसरे स्थान पर, दीवारों को खड़िया से मत बिगाड़ो। ऐसा कभी न करो कि तुम अपराध करो और तुम्हारे अपराध के लिये दूसरा दण्ड पावे अर्थात् झूठ-मूठ उसके सिर अपराध न मढ़ दो। क्योंकि ऐसा करना

नीचता और भीरुता का लक्षण है और वीरता तथा सहिष्णुता के नितान्त विरुद्ध है, जिनके लिये हम अपने पूर्वजों पर अभिमान करते हैं।

यदि स्कूल में कोई अन्य पुरुष स्कूल देखने के लिये आवे, तो अपना काम छोड़कर उसकी ओर मत घूरो; क्योंकि यह तुम्हारी असभ्यता का परिचय देता है।

२३—खेलना।

ऐसे खेल कभी मत खेलो जिनमें बेईमानी और असभ्यता का व्यवहार करना पड़े अथवा किसी को धोका देना पड़े। यदि तुम्हारे पक्ष वालों की हार हो रही हो, तो विपक्षियों को ईर्षा अथवा क्रोध की दृष्टि से न देखो और अपनी हार को प्रसन्नता के साथ स्वीकार कर लो।

सदा इस बात को याद रक्खो कि, जब तक तुम्हारे विपक्षी पूर्णतः न जीत जावें तब तक तुम्हारी हार तो हो ही नहीं सकती। इस लिये वैसे ही उत्साह और परिश्रम के साथ खेलते रहो, मानों तुम्हारा पक्ष जीत रहा है। हार हो जाने पर उत्साहहीन न हो जाओ; क्योंकि जीत केवल तुम्हारे लिये ही नहीं है। खेल की जीत अथवा हार, दोनों में प्रसन्न मुख दिखाई दो। साथियों से हमेशा मित्रता का व्यवहार रक्खो। जब खेल का कार्य्य तुम्हारी इच्छानुसार न चलता हो, तब दूसरों से लड़ न जाओ और न अपने विपक्षियों के नये-नये उन्हें बुरे लगने वाले

नाम रखकर, उन्हें पुकारो, जैसा कि बहुधा बालक किया करते हैं। क्योंकि ऐसा करना नीचता और घृणा की बात है।

खेल में उजड्डपन न दिखलाओ। अपने से छोटों और निर्बलों का भी ध्यान रक्खो और सदा सभ्यता से अच्छे-अच्छे खेल खेलो।

२४—मार्ग।

इस बात का ध्यान सब लोगों को होना चाहिये कि, सड़क पर केवल किसी एक का अधिकार नहीं है, किन्तु सब का है। इस लिये, जब तुम सड़क पर चलो, तो दूसरों के सुभीते का भी ध्यान रक्खो। रास्ता चलने में मित्रों के साथ सड़क-की-सड़क न घेर लो अथवा समूह बनाकर दूसरों के चलने में रुकावट न करो। साधारणतः ऐसा नियम है कि, प्रत्येक मनुष्य को सड़क की दाहिनी ओर चलना चाहिये। यदि तुम छड़ी या छाया लेकर चलो तो उसे इस प्रकार से पकड़े रहो कि, दूसरों को कष्ट न पहुँचे। जब तुम अपने से उच्च पदाधिकारी अथवा आयु में बड़े पुरुष के साथ चलो, तो सदैव उसके कुछ पीछे रहो और उसके बाईं ओर को चलो।

अपने से बड़ों से मिलने के समय प्रथम उनसे प्रणाम कर लो। फिर किसी बात का प्रसङ्ग छेड़ो, यदि तुम्हें ऐसी आवश्यकता हो!

प्रायः ऐसा होता है कि, विचार-हीन पुरुष नारङ्गी, केला

इत्यादि फलों के छिलकों को परनाली या नालियों में डालकर सड़क पर फेंक देते हैं। पावस ऋतु में ऐसी वस्तुओं और काग़ज़ के टुकड़ों को सड़क पर फेंक देने से वे सड़ते हैं और बड़ी हानि पहुँचाते हैं। जब तुम्हें रास्ते में पड़ी हुई ऐसी वस्तुयें मिल जायें, तो उन्हें पैर से नाली में खिसका दो।

जहाँ देखा, वहाँ थूक देना एक बहुत ही हानिकारक और घृणित स्वभाव है। इसके कारण बहुत रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रेलगाड़ी, ट्रेमवे और बहुत सी आम जगहों में थूकना मना कर दिया गया है, और ऐसा न मानने वाले दण्ड-भागी होते हैं।

शान्ति के साथ चलो, जिससे अन्य चलते हुए पुरुषों को धक्का न लगे। आम जगहों में ज़ोर से न हँसो और न ज़ोर-ज़ोर से बातें करो।

बरसात में रास्तों में स्लाइड्स (Slides यानी रपटन) न बना दो, क्योंकि वृद्ध पुरुषों और बच्चों के लिये ये बहुत ही भयानक हैं और तुम्हारे लिये केवल खेल हैं।

२५—सफ़र।

मनुष्य को सफ़र करते समय, अपने पास बहुत ही हलका बोझ लेकर चलना चाहिये तथा गम्भीरता धारण कर लेना चाहिये। किसी अपरिचित मनुष्य पर एकदम विश्वास कर लेना मूर्खता है। यदि सफ़र के समय किसी को सहायता करने का अवसर आ जाय तो कदापि न चूको। सफ़र के

समय तुम्हारे पास सब आवश्यक वस्तुयें होनी चाहिये। ट्रेमवे, रेलगाड़ी और ऐसी ही अन्य सवारियों में भीड़ न करो। क्योंकि ऐसा न करने से बहुतों को सुख पहुँचता है। यदि कोई डब्बा बहुत भरा हुआ है, तो दूसरे में जा बैठो, किसी से धक्का-मुक्की करके बैठ जाने का प्रयत्न न करो।

गाड़ी, बाग़ और सड़कों पर जूठन न डालो अथवा काग़ज़ों को फाड़कर न फैला दो, किन्तु उन्हें ऐसे स्थान पर फेंक दो जहाँ सब लोगों की निगाह हर समय न रहती हो और किसी को बुरा न मालूम हो। जब तुम सफ़र कर रहे हो और गाड़ी या ट्रेमवे में अपने मित्रों के साथ बैठे हो तो अपने अथवा अपने पड़ोसियों के कार्य्यों के विषय में इस प्रकार बात-चीत न करो कि, दूसरे लोग तुम्हारी बात-चीत को सुनें।

२६—भोजन।

भोजन के ऊपर ही हमारा जीवन, स्वास्थ्य और स्वभाव निर्भर है। पहला ध्यान तो भोजन के विषय में यह होना चाहिये कि, वह प्रकृति के अनुसार हो। जैसे मनुष्य का भोजन कन्द, मूल, फल इत्यादि माना गया है। मांसाहारी पशुओं का भोजन मांस, और खुर वाले पशुओं का भोजन घास, पत्ते, इत्यादि माने गये हैं। इन बातों की परीक्षा बहुत से पश्चिमी विद्वान् भी कर चुके हैं और अब वे स्वयम् शाकाहारी बनने लगे हैं। इस लिये मांस न खाने के विषय में अधिक उल्लेख करना ठीक नहीं है।

समय के प्रभाव से हम स्वाभाविक भोजन छोड़कर अन्य पदार्थ खाने लगे हैं, जो कि आज-कल सैकड़ों रोगों के कारण हैं। भोजन बड़ी स्वच्छता के साथ बना हो। मैले-कुचैले मनुष्य का बनाया हुआ भोजन कभी न खाओ, चाहे वह मनुष्य तुम्हारे घर का ही क्यों न हो। भोजन करने में ध्यान रखना चाहिये कि वह सात्वकी पदार्थों से बनाया गया हो। क्योंकि गरम पदार्थ बहुत से सद्गुणों को मेटकर मनुष्य में अनेकानेक दुर्गुण उत्पन्न कर देते हैं। स्नान करके भोजन करना चाहिये, क्योंकि स्नान करने से क्षुधा ठीक लग आती है और पाचनेंद्रियों को उत्तेजना मिलती है। भोजन के समय मैली-कुचैली कोई वस्तु पास न होनी चाहिये। भोजन करते समय ऐसे स्थान में न बैठो, जहाँ से धूल उड़-उड़कर थाली में गिरे, क्योंकि यह धूल भी अनेक रोगों की मूल है। इसी कारण से भारतवर्ष में चौके की प्रथा जारी है।

२७—अन्यान्य बातें।

सच्ची नम्रता का व्यवहार कई प्रकार से हो सकता है और विशेष कर छोटी-छोटी बातों से। किसी के साथ दुष्टता का व्यौहार न करो, चाहे वह तुमसे छोटा हो या बड़ा, चाहे धन-वान् हो अथवा दीन, किसी के कमरे में प्रवेश करते समय उसके द्वार को खटखटाओ।

अपने से बड़ों के लिये स्वयम् उठकर द्वार खोलो और उन्हें

बैठने को आसन दो। किसी आगन्तुक को खड़ा कभी न रक्खो, चाहे वह तुमसे बड़ा हो या छोटा; जब वह जाने के लिये उद्यत हो, तो स्वयम् उठकर नम्रता के साथ उसे द्वार तक पहुँचा दो। दो मनुष्यों की बात-चीत में बिना आज्ञा हस्तक्षेप करना बहुत ही बुरा है। मैंने कई एक मनुष्यों को कहते सुना है कि—"किसी की बात काटने की अपेक्षा उसकी गर्दन काट लेना अच्छा है!" इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खो कि, जब तक तुमसे कोई बात न पूछी जाये, तब तक बीच ही में तर्क न करने लगो। अपना कार्य्य सम्हालो, दूसरों के कार्य्यों का भेद लेना असभ्यता है।

दूसरों की कोई बात तय करते समय, उसे शीघ्र ही तय न कर डालो; किन्तु उसे भले प्रकार विचार लो। यदि कोई बात तुम्हारी समझ में न आवे, तो बिना समझे-बूझे न कर डालो; किन्तु अपने से बड़ों से उसमें राय ले लो। कोई कार्य्य ऐसा न करो, जिसमें राय लेने से तुम्हें गुरुजनों से लज्जा मालूम होती हो। दूसरोंकी बात उसी प्रकार तय करो, जिस प्रकार कि, अपनी बात को तुम उनके द्वारा तय कराना चाहते हो।

जब तुम किसी के साथ बात-चीत कर रहे हो, तो नीचे की ओर मत देखो; सदैव उसके मुँह की ओर देखने का स्वभाव डालो, परन्तु घूर कर नहीं। "मुझे इससे बड़ा शोक है" अथवा "क्षमा कीजियेगा"—इन वाक्यों को समयानुसार कहने में कभी लज्जा न करो। किसी की दुष्टता के कारण यदि तुम्हें

दुःख पहुँचा हो, तो उससे भी असभ्यता का व्यवहार न करो।

गाली देने वालों अथवा दुष्टों को उनके कार्य्य में उत्तेजित न करो। ऐसे लोगों के सम्मुख अपने सद्विचार प्रकटकर, उनकी सङ्गति त्याग दो अथवा जहाँ तक हो सके, उनके स्वभाव को बदलने का प्रयत्न करो। सदैव अच्छे-अच्छे और सब को प्रसन्न करने वाले वाक्य मुख से निकालो। तात्पर्य्य यह कि— "ऐसी बात किसी के सम्मुख न कहो, जिसको कि तुम अपनी माँ और भगिनियों के सम्मुख न कह सकते हो।"

जब मित्रों से मिलो, तो बड़े प्रेम से मिलो। यदि तुम्हें उनके लिये कुछ कष्ट सहन करना पड़े, तो प्रसन्नता पूर्वक सहन करो। महात्मा तुलसीदासजी ने कहा है—"जे न मित्र दुख होहिँ दुखारी। तिनहिँ विलोकत पातक भारी।" अपने मित्रों से सत्यता का व्यवहार रक्खो।

अल्पज्ञता तथा मूर्खता के शब्द मुख से न निकालो, क्योंकि ऐसे शब्दों के कारण कभी-कभी बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं। जिनसे तुम्हें प्रति दिन बात-चीत करनी पड़ती हो अथवा जिनके निकट तुम्हें अहर्निशि निवास करना पड़ता हो, उनके साथ भी प्रति दिन की बातों में नम्रता का व्यवहार करो।

तुम्हारे लेख सदैव स्वच्छता के साथ लिखे जाने चाहिये; इतना स्वच्छ लिखो कि, पढ़ने वालों को पढ़ने में सुभीता हो।

आज-कल कुछ ऐसी प्रथा चल गई है कि, लोग अपने नाम तथा स्थान को बहुत बुरी भाँति लिखते हैं—यह बड़ी बुरी बात है तथा अशान्त होने का परिचय है। मान लिया, कि आपने घसीटकर लिख दिया और अपना समय बचा लिया, परन्तु आपको दूसरों के समय तथा कष्ट की भी परवाह होना चाहिये। आपके ५ मिनट बच जायेंगे, परन्तु दूसरों के घण्टे-के-घण्टे लग जायेंगे; तब भी आपका लेख भले प्रकार न पढ़ा जा सकेगा। इस प्रकार दूसरों को कष्ट देना असभ्यता है। यदि किसी पत्र का पता शुद्ध-शुद्ध नहीं लिखा गया है, तो पत्र के पहुँचने में देरी हो अथवा जिसके नाम पत्र भेजा गया हो, उसको पत्र न मिलने से डाकिया (Postman) का कोई दोष नहीं। इसमें घसीटकर पता लिखने वाले का दोष है, और बहुधा ऐसा होता है।

प्रतिदिन की छोटी-छोटी बातों पर क्रोध न करना चाहिये, किन्तु धैर्य और शान्ति से काम लेना चाहिये। यदि हम प्रतिदिन की छोटी-छोटी बातों पर क्रोध करें, तो इस संसार में हमारा जीवन ही दुर्लभ हो जाय। यदि आप दूसरों से दया की आशा रख सकते हो, तो वे अवश्य आप पर दया करेंगे। हमको स्मरण रखना चाहिये कि, संसार वैसा ही है, जैसा कि हम सब लोग बनावें। इस बात को न भूलते हुए सदैव प्रसन्न चित्त रहो कि—"हमको दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा कि हम उनसे चाहते हों।"

२८—कुछ अप्रिय बातें।

बहुत से नवयुवक तथा अन्य पुरुष भी कभी-कभी ऐसे-ऐसे कार्य करने लगते हैं जो दूसरों को रुचिकर नहीं होते। उनमें से बहुत से तो घृणित कार्य होते हैं। वे थोड़े कार्य यहाँ लिखे जाते हैं, जिससे कि नवयुवकों को उनका ज्ञान हो जाय और उनसे बचकर वे बुरे आचरण वाले न कहलाये जा सकें।

(१) अँगुलियों के नुँह—ऐसा होना बहुत कम सम्भव है कि, तुम्हारे हाथ सदैव स्वच्छ रहें और नाखूनों में मैल न भर गया हो, विशेष कर उस समय जब कि तुम कोई कार्य कर रहे हो। परन्तु जब तुम हाथ-पैर धोकर और स्नान करके अपने को स्वच्छ कर लो, तब तुम्हारे मैले रहने का कोई कारण नहीं हो सकता। नाखून को छाँटकर स्वच्छ रक्खो। उनके भीतर मैल जमा हो जाने से वे बहुत बुरे मालूम पड़ते हैं। मैल जमा होकर नाखूनों को काला बना देता है तथा अनेकानेक नाखून सम्बन्धी रोग उत्पन्न कर देता है। नाखूनों के भीतर, किसी वस्तु से, खरोंचा न करो, नहीं तो पीड़ा उत्पन्न हो जाने की सम्भावना है। नाखूनों को इस प्रकार छाँटना चाहिये कि, उगली के सिरे की शकल बन जावे, परन्तु ऐसा करना पब्लिक में मना है और बहुधा हम इस बात पर ध्यान नहीं देते।

(२) नासिका—बालक और बालिकाओं को नासिका स्वच्छ रखने में बड़ी अड़चन दिखाई देती है, परन्तु औरों के लिये

उनका नासिका का स्वच्छ न रखना सब घृणित कार्यों से अधिक घृणित प्रतीत होता है। हाथ तथा मुँह पोछने के लिये जेब में रूमाल रक्खो, परन्तु उसको इस प्रकार व्यवहार में न लाओ कि, निकटस्थ पुरुषों का चित्त तुम्हारी ओर आकर्षित हो जाय। ऐसा कार्य शान्ति से करना चाहिये, क्योंकि शान्तिमय आचरणों से तुम सभ्य बन सकते हो।

यदि तुम कुछ मित्रों अथवा अन्य पुरुषों के साथ बैठे हो और छींक अथवा खाँसी आ जावे, तो मुख फेरकर ऐसा कर लो। और रूमाल से मुँह पोंछकर उसे जेब में रख लो। खाँसी अथवा छींक आते समय रूमाल को अपने मुँह के सामने कर लो।

(२) दाँत—दाँत सदैव प्रातःकाल और रात्रि को सोने से प्रथम दन्तधावन अथवा ब्रुस द्वारा स्वच्छ कर लेने चाहिये, विशेष कर रात्रि के समय। क्योंकि भोजन करते समय खाद्य पदार्थों के छोटे-छोटे परमाणु दाँतों की सन्धियों में भर जाते हैं और उनके स्वच्छ न किये जाने पर वे सोते समय मुख के भीतर सड़ते हैं तथा दुर्गन्ध उत्पन्न कर देते हैं और दन्त-पीड़ा के कारण बनकर दुःख पहुँचाते हैं और दाँतों को निर्बल बना देते हैं। ऐसी दशा में दाँत वृद्धावस्था के प्रथम ही गिर जाते हैं और जीवन के सुख, स्वास्थ्य और स्वादु प्रभृति सब से रहित होना पड़ता है। यदि दाँतों में किसी भाँति की पीड़ा जान पड़े, तो उन्हें तुरन्त स्वच्छ करो और किसी योग्य दन्त-चिकि-

तक को दिखलाओ। दाँत स्वच्छ और श्वेत रङ्ग के होने चाहिये; किसी प्रकार का धब्बा होना उसमें बीमारी का लक्षण है।

भोजन करते समय कवल (कौर) को मुख में चारों ओर न घुमाओ और न चबाते समय मुख को इतना फाड़ देना चाहिये, कि जीभ बाहर निकलकर ओठों तक चलती दिखायी पड़े। ओठों को न चाटना चाहिये। पब्लिक में अथवा भोजन करते समय दाँतों को उँगलियों से न पकड़ना चाहिये। तात्पर्य यह कि, जब तुम किसी के साथ बात-चीत करते रहो अथवा किसी के पास बैठे हो तो मुख में उँगली कभी न डालो, क्योंकि ऐसे स्वभाव बहुत बुरे, हानिकारक और घृणित हैं।

(४) थूकना—नवयुवकों के लिये यह एक बहुत ही भद्दा स्वभाव है और उनको ऐसा करने की कोई आवश्यकता भी नहीं और न कोई बहाना ही हो सकता है। उन वृद्ध पुरुषों की बात जाने दीजिये जो खाँसी अथवा फेफड़े के रोगों में ग्रसित हैं। परन्तु तो भी कफ को इस प्रकार से (मुँह फेरकर अथवा उस स्थान से हटकर) थूकना चाहिये कि, किसी निकटस्थ पुरुष को घृणा न लगे। अधिक थूकने से पाचन-शक्ति निर्बल हो जाती है और मुँह की आकृति रोगियों की सी हो जाती है।

एक अप्रिय स्वभाव, जो थूकने से ही सम्बन्ध रखता है, गले को साफ़ करना अथवा कफ को बड़े ज़ोर से खखारकर बाहर निकालना है। बहुत से बालकों में यह स्वभाव आ जाता है।

इस स्वभाव को छोड़ने के लिये उन्हें इस बात के जानने की आवश्यकता है कि, यह ऐसे घृणित और अनावश्यक शोर-गुल दूसरों को कितना कष्ट पहुँचाते हैं। यह बातें आवश्यक समय की हैं, न कि किसी के स्वभाव बन जाने के योग्य। नासिका में वायु का ज़ोर से खींच कर प्रेरित करना भी इतना ही बुरा है।

बहुत से बच्चों के ये स्वभाव बढ़ते-बढ़ते उनके लिये दुष्-त्याज्य हो जाते हैं। इस कारण बचपन ही से धीरे-धीरे इन स्वभावों को छोड़ देना चाहिये।

अन्यान्य स्वभाव भी ऐसे हैं, जो अनावश्यक और त्याज्य हैं; जैसे कि मुख, नासिका, नेत्र तथा कानों से खेल करना, शिर खुजलाना अथवा बार-बार बिना आवश्यकता के केशों में उँग-लियाँ लगाना। बालिकाओं को, जिन्हें भोजन बनाना पड़ता है, इन स्वभावों से अधिक सावधान रहना चाहिये। जो मनुष्य उनको ऐसा करते देख लेते हैं, वे उनसे घृणा करने लग जाते हैं।

२९—छोटी-छोटी बातें।

जगत्प्रसिद्ध राजनीति-ज्ञाता लार्ड पामर्स्टन कहा करते थे कि, छोटी-छोटी बातों से ही मनुष्य के गुणों और स्वभावों की परीक्षा हो जाती है। उन वर्षों में, जब कि वे जल-सेनाधिपति युद्ध-मन्त्री, उपनिवेशों के मन्त्री, 'सेक्रेटरी आफ स्टेट्स फार दि होम आफिस' थे, और विशेष कर जब वे इङ्गलैण्ड के प्रधान

मन्त्री थे, उन्हें राज्य के मुख्य-मुख्य पदों पर कार्य करने के लिये सैकड़ों नवयुवकों को चुनना पड़ा था और कदाचित् ही ऐसा होता था कि, जिसको वे जिस पद पर नियुक्त करते थे, उस पर वह भले प्रकार कार्य न कर सकता हो।

एक दिन, जब उनके एक मित्र ने उनसे पूछा कि, आपको इतनी सफलता कैसे हुई कि, जिसको आप किसी पद पर नियुक्त करते हैं वह ठीक ही ठीक कार्य चलाता है, तो उनका उत्तर था कि, मैं छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान देता हूँ। उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया था:—

"मैं मूल्यवान् वस्त्रों की परवा नहीं करता। जब कोई नवयुवा मुझसे मिलने आता है, तो मैं विचार करता हूँ कि, उसके वस्त्र, यद्यपि वे पुराने अथवा कम मूल्य के क्यों न हों, स्वच्छ हैं या नहीं? मैं देखता हूँ कि उसके जूते स्वच्छ हैं या नहीं? उसके केश स्वच्छता के साथ सम्हाले गये हैं या नहीं? उसके हाथों के नाखूनों में मट्टी तो नहीं भरी हुई है, अथवा नाखून उचित रीति से छँटे हुए हैं या नहीं? मैं इस बात को बड़े ध्यान के साथ देखता हूँ कि, वह अपने रूमाल का व्यवहार भली भाँति करता है या नहीं? मैं इस बात के जानने का भी बड़ा प्रयत्न करता हूँ कि, उसमें कोई बुरा स्वभाव अथवा बुरे आचरण तो नहीं हैं, जिनके कारण वह दूसरों को, जो उसके साथ कार्य-व्यवहार रक्खे, दुःख-प्रद हो?"

"जो कुछ वह मेरे सम्मुख भाषण करता है, उसे मैं बड़े

ध्यान से श्रवण करता हूँ; और थोड़े समय में ही समझ लेता हूँ कि, वह अभिमानी और शेखीखोर है अथवा शुद्ध हृदय और सुशील। उसके आचरण भले मनुष्यों के से हैं या बुरे आदमियों के से हैं।"

यह छोटी-छोटी बातें ही बतला देती हैं कि, अमुक पुरुष भला है अथवा बुरा। नवयुवाओ! इस बात को हृदयङ्गम कर लो कि, हमारी छोटी-छोटी बातें ही बतला देंगी कि, हम में कौन-कौन से गुण और कौन-कौन से अवगुण हैं? हमारी सच्ची सुशीलता अथवा हमारे सद्विचार तभी जाने जा सकते हैं जब हम दूसरों के साथ व्यवहार करें। जिस प्रकार जल से बूँद-बूँद करके समुद्र बना है और रेत के छोटे अणुओं से रेगिस्तान बना है, उसी प्रकार जीवन का कार्य कुछ बड़े-बड़े उद्योगों से ही नहीं चलता, किन्तु छोटे-छोटे दयायुक्त कार्य, सब को प्रिय लगने वाले शब्द, उत्तम विचार और परमार्थ से चलता है। और ऐसा करने से वे पुरुष, जो हम से परिचित हैं, हमारी प्रतिष्ठा करेंगे; हम को प्रिय समझेंगे और आवश्यकतानुसार हमारी सहायता करने को उद्यत होंगे।

३०—स्वच्छ वायु।

हम पीछे कह चुके हैं कि हमको चाहिये कि, अपने स्वास्थ्य को इतना सुधारें, जितना कि सुधार सकें। पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने के हेतु हमको अत्यन्त निर्मल वायु मिलना चाहिये। निर्मल वायु से हमें जीवन नवीन प्रतीत होने लगता है और शारीरिक स्वास्थ्य के लिये वह अत्यावश्यक है। इस कारण कमरों को ऐसा बनाना चाहिये कि, उनमें वायु भले प्रकार आ-जा सके। शयनागार की खिड़कियाँ सदैव खुली हुई रखनी चाहिये। रात्रि को सोते समय मुख को ओढ़ने वाले वस्त्र के बाहर खुला हुआ रखना चाहिये, क्योंकि मुख को ढकनेसे निश्वासित वायु पुनः पुनः श्वास में खींचनी पड़ती है, जो कि हानिकारक है। जब चारपाई से उठो, तो बिछौने को भी चारपाई से उठालो और चारपाई तथा बिछौने को झाड़कर उनकी गर्द निकाल दो। प्रातःकाल उठकर समस्त कमरे को झाड़-बुहारकर स्वच्छ कर दो। कमरे में ऐसी वस्तुयें होनी चाहिये, जिनके उठाने और रखने में सुविधा हो। इससे ठीक-ठीक स्वच्छता हो सकती है और समय का

बचाव भी है तथा प्रतिदिन कमरे को स्वच्छ करने में आलस्य भी प्रतीत न होगा।

३१—धूप।

धूप समस्त जीवधारियों के लिये लाभ दायक है। जब कोई पौधा अन्धकार में रख दिया जाता है,तो उसका रङ्ग उड़ जाता है। वह पीला और निर्बल होने तथा सूखने लगता है। इसी प्रकार मनुष्य को जब सूर्य्य का सुन्दर प्रकाश नहीं मिलता, तब उसकी भी पौधे के समान दशा होती है। धूप के सहन करने का थोड़ा अभ्यास अवश्य होना चाहिये। पर्दा, गलीचा तथा फ़रनीचर इत्यादि को भी इस लाभ दायक सूर्य्य-प्रकाश से वञ्चित न रखना चाहिये। यद्यपि वे धूप के कारण मुरझाये हुए जान पड़ेंगे, परन्तु उनमें शीत के कारण उत्पन्न हुए कीटाणु, जो अनेकों रोगों के कारण हैं नष्ट हो जाते हैं। धूप बड़ी ही अमूल्य और स्वास्थ्य-प्रद वस्तु है। प्रातःकाल उठकर सूर्य्य की प्रथम किरणों को खुले हुए वक्षःस्थल पर लेने से फेफड़े सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। माली लोग इस बात को भली भाँति जानते हैं कि, जिन पौधों को सूर्य्य की प्रथम किरणें नहीं मिलतीं वे अन्य पौधों की अपेक्षा निर्बल रहते हैं।

३२—शारीरिक स्वच्छता।

१ स्नान—स्वास्थ्य के लिये स्वच्छ और ताज़ी हवा तथा धूप के पश्चात् शारीरिक स्वच्छता है। त्वचा को स्वच्छ रखना

चाहिये, जिससे पसीना निकलने के छिद्र खुले रहें और शरीर के विकृत पदार्थ पसीने द्वारा निकलते रहें। प्रति दिवस शीतल अथवा ताज़े जल से स्नान करना अत्यन्त लाभ दायक है। सप्ताह में एक बार कुछ-कुछ गरम जल से भी स्नान कर लेना चाहिये। स्नान करते समय तौलिया अथवा किसी मोटे कपड़े का टुकड़ा अवश्य पास होना चाहिये, जिसके द्वारा शरीर खूब मला जा सके। प्रत्येक अङ्ग को मल-मलकर धोओ। जब स्नान कर चुको, तो शरीर को भली भाँति पोंछकर पुनः दूसरा वस्त्र धारण करो। शरीर के शुष्क हो जाने के उपरान्त त्वचा को हाथ की गद्दी से खूब, और धीरे-धीरे रगड़ना चाहिये। रगड़ने से शरीर में गर्मी आ जाती है और सर्दी लग जाने का भय नहीं रहता। त्वचा को रगड़ने से एक और बड़ा लाभ होता है—त्वचा में सुन्दरता आ जाती है।

भोजन करने के पश्चात् स्नान करना हानिकारक है और यदि ऐसा ही अवसर आ पड़े कि, किसी कारण वश भोजन के पूर्व स्नान न कर सको, तो भोजन करने के उपरान्त दो घण्टे पश्चात् स्नान कर सकते हो। कोई-कोई ऐसा करते हैं कि, उष्ण जल से स्नान करने के पश्चात् शीतल जल से स्नान करते हैं। उनके लिये अत्यावश्यक है कि, वे फिर इतना परिश्रम करें कि,शरीर में भले प्रकार से उष्णता आ जाय। यदि परिश्रम करने का अवसर न मिले तो गरम वस्त्र ओढ़कर लेट जाना चाहिये, नहीं तो सर्दी लग जाने का भय रहता है और यदि

मनुष्य निर्बल है,तो उसे ऐसी दशा में (शरीर में उष्णता न लाई जाय) सन्नपात हो जाता है।

स्नानागार में दुर्गन्धित वस्तुओं का होना अत्यन्त हानिकारक है। रात्रि को शयन करने के प्रथम हाथ-मुँह धो लेना चाहिये। क्योंकि हाथ मुँह धो लेने से सुख की निद्रा आती है। स्नान करते समय ध्यान रखना चाहिये कि, प्रथम शिर और फिर पैर धोना चाहिये। साबुन का उपयोग करना सर्वथा हानि-कारक, है क्योंकि साबुन से त्वचा के छिद्र बन्द हो जाने सम्भव हैं। जो पुरुष साबुन का उपयोग करते हैं, उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि, वे अति सुगन्धित साबुन उपयोग में न लावें।

२ कान—कान भीतर बाहर दोनों ओर भली प्रकार स्वच्छ और शुष्क रखने चाहिये। उन्हें किसी पतली लकड़ी अथवा कील से न खरोंचना चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे सदा के लिये कोई न कोई कष्ट हो जाता है। कानों को मैले रखने से वे बहने लगते हैं और मनुष्य बहरा हो जाता है। रात्रि को सोते समय रुई से कानों के छिद्र बन्द कर देना अच्छा है; क्योंकि ऐसी दशा में कोई कीड़ा पतिङ्गा उनके अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता।

३ नेत्र—नेत्रों को प्रातःकाल उठकर प्रथम उष्ण जल और पुनः शीतल जल से धोना चाहिये। मुख में पानी भरकर नेत्र धोने से उनकी ज्योति बढ़ती है। नासिका द्वारा जल पीने से भी नेत्र सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। यदि नेत्र कुछ निर्बल

हों तो दिन में उनको कई बार शीतल जल द्वारा धोना चाहिये।

४ बाल—शिर को स्वच्छ रखने के लिये बालों का स्वच्छ रखना एक बड़ी ही आवश्यक बात है। स्नान करके बालों को कङ्घोंसे बहाना चाहिये; क्योंकि इस भाँति बाल स्वच्छ हो जाते हैं। नवयुवाओं को चाहिये कि, वे बालों को सादा रीति से बनवायें; क्योंकि भड़क देनेवाले बालों की कोई आवश्यकता नहीं और न उन्हें ऐसा उचित है। बालों को स्वच्छ रखने से शिर में फोड़ा-फुन्सी के होने का भय नहीं रहता; मस्तिष्क-शक्ति भी अपना कार्य भले प्रकार करती है। कोई-कोई मनुष्य तो बालों को इस प्रकार बनाते हैं कि, उनको देखते ही सब का चित्त उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। ऐसा करना सर्वथा अनुचित है।

३३—दुर्गन्धि।

दुर्गन्धि से सदैव बचे रहो; क्योंकि यह बड़ी ही भयानक वस्तु है। यदि घर में किसी प्रकार की दुर्गन्धि जान पड़े, तो तुरन्त मोरी और परनाले की परीक्षा करो, विशेष कर उस समय जब कि, घर में किसी के गले में पीड़ा होने की शङ्का भी हो। नाली की दुर्गन्धि सब से विलक्षण होती है जो कि, तुरन्त ही जान ली जाती है और कष्ट के आगमन की सूचना मिल जाती है। दुर्गन्धि-युक्त भोजन (लहसुन, प्याज इत्यादि दुर्गन्धित

वस्तुओं द्वारा मिश्रित भोजन) न करना चाहिये। क्योंकि लहसुन और प्याज इत्यादि ऐसी वस्तुओं से मनुष्य का स्वभाव क्रोधी बन जाता है।

३४—कमरों को सजाना।

दीवारों में चित्र लगाते समय यह बात देख लेनी चाहिये कि, पुराने कागज़ में जो दीवारों में लगे रहते हैं, बहुत छूतदार रोगों के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं और दुःख पहुँचाते हैं।

चित्र रङ्गीन और अच्छे-अच्छे महात्माओं के होने चाहिये; न कि कामी और दुष्ट पुरुषों के। कारण यह है कि, उन्हें प्रति दिन देखने से हमारे चित्त पर उनकी प्रकृति तथा कार्य्यों का प्रभाव पड़ता है। कमरों को कागज़ से ही सजाना है तो स्वास्थ्य कारक दीवार के कागज़ (Sanitary wall Paper) लगाना चाहिये। यह कागज़ आवश्यकतानुसार धोये भी जा सकते हैं।

३५—स्वच्छ तथा उचित वस्त्र।

यदि वस्त्र स्वच्छ नहीं हैं तो शरीर को स्वच्छ रखना, स्वच्छ न रखने के ही तुल्य है। वे वस्त्र जो हमारे शरीर की त्वचा को स्पर्श किये रहते हैं अधिकतर बदलते रहने चाहिये और उन्हें पहनकर कभी न सोना चाहिये। इतना प्रबन्ध अवश्य कर लो, चाहे धनवान् हो अथवा निर्धन, कि सोने के समय के लिये शरीर के ऊपर पहिने जाने के वस्त्र दिन के वस्त्रों को

अपेक्षा अलग हों। पहनने के वस्त्र ढीले और सदैव स्वच्छ रहने चाहिये ; पतलून पहनकर कमरबन्द द्वारा कमर कस लेना हानिप्रद है। दिन में अथवा रात्रि में कोई वस्त्र ऐसे न पहनने चाहिये, जो किसी अङ्ग को कस लें।

हमारे पहनने के वस्त्र उष्ण होने चाहिये। छाती और पीठ पूर्णतः ढकी रहनी चाहियें। शिर को ठण्डा और पैरों को उष्ण रखना चाहिये। वस्त्र हलके हों, क्योंकि भारी वस्त्र हमको थकावट पहुँचाते हैं, परन्तु उष्ण अवश्य हों।

भीगे हुए वस्त्र पहनकर न बैठो। यदि तुरन्त ही उन्हें न बदल सको तो, जब तक अन्य वस्त्र न पहन लो अर्थात् भीगे हुए वस्त्रों को न उतार दो, बराबर टहलते रहो।

बूट अथवा जूते स्वच्छ और ऐसे होने चाहिये कि, जिनसे सुख मिले ; सर्दी और गर्मी से रक्षा हो ; तथा पैरों को भीगने से भी बचा सकें। ऊँची एड़ी के जूते पहनना अतीव हानि-कारक है; क्योंकि ऊँची एड़ी के होने के कारण पञ्जों पर अधिक बल पड़ता है और पुट्ठों पर भी अधिक दबाव रहता है, इस कारण कभी-कभी उनमें बड़ी पीड़ा होने लगती है।

२६—ठण्डे पैर।

कभी-कभी शीतकाल में पैर ठण्डे हो जाते हैं। उस समय शीघ्रता के साथ चलने से उनमें उष्णता आ जाती है। यदि किसी दशा में ऐसा न हो सके, तो सूखे हुए उष्ण फलालैन के

टुकड़े से उन्हें भली भाँति रगड़ना चाहिये, जिस से रुधिर की गति पुनः सञ्चारित हो जाय। उनको अग्नि के ताप द्वारा उष्ण करना हानिकारक है। ठण्डे और भीगे पैर रहने से फेफड़े सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं और क्षयरोग के हो जाने की आशङ्का रहती है।

शीतकाल में जब पैर ठण्डे हो जाते हैं, तो उस समय वैसे ही पैरों से सोना ठीक नहीं। ऊनी मोज़े पहनकर सोना चाहिये। अन्य किसी प्रकार से पैरों को उष्ण करने की अपेक्षा ऊनी मोज़े पहन लेना सब से उत्तम है।

३७—व्यायाम।

यदि हम स्वास्थ्य को ठीक दशा में रखना चाहें, तो व्यायाम की ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है। व्यायाम खुली हुई वायु में करना अत्युत्तम है। प्रातःकाल और सायंकाल के समय वायु-सेवन को जाना, कूदना फाँदना, और जल में तैरना भी (जहाँ नदी अथवा स्वच्छ तालाब लभ्य हों) व्यायाम में सम्मि-लित हैं। इस उपरोक्त, अन्तिम कहे हुए, कार्य से शरीर को बड़ा लाभ पहुँचता है; रुधिर की गति ठीक हो जाती है; शरीर में बल आता है; रुधिर विकार-रहित होकर शुद्ध हो जाता है; क्षुधा ठीक समय पर, उचित रीति से लगती है: और शरीर का प्रत्येक अङ्ग सामान्य दशा में रहता है।

व्यायाम करने से शरीर बालकपन से ही सुन्दर और दृढ़

हो जाता है; परन्तु अधिक व्यायाम न करना चाहिये। अधिक व्यायाम करने से मस्तिष्क-शक्ति निर्बल हो जाती है और निद्रा बहुत आती है। स्मरण रक्खो कि, जिन मनुष्यों को चलने-फिरने अथवा परिश्रम के कार्य नहीं करने पड़ते, उनको बिना व्यायाम भोजन ठीक-ठीक नहीं पच सकता। उचित रीति से व्यायाम करने से जीवनी-शक्ति की वृद्धि होती है।

बिना परिश्रम किये मनुष्य साहस-हीन हो जाता है; समस्त सुख की सामग्री भी उपस्थित होते हुए उसे सुख की निद्रा नहीं आती; विद्या भी भले प्रकार नहीं आती; और मनुष्य अति निर्बल होकर सहस्रों रोगों का शिकार हो जाता है।

हाकी, फुटबॉल प्रभृति खेल, जिनमें दौड़कर एकदम खड़ा होना पड़ता है और पुनः बड़ी तीव्रता के साथ दौड़ना पड़ता है, लाभ दायक होने की अपेक्षा हानिकारक हैं और फेफड़े सम्बन्धी रोगों के कारण हैं। इस कारण बुद्धिमानों का बतलाया हुआ व्यायाम अथवा देशी कसरत करना अत्युत्तम है और प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन नियमानुसार करना चाहिये।

३८—ब्रह्मचर्य्य।

नवयुवको! जितनी बातें अभी तक लिखी जा चुकी हैं, उनकी प्रायः ब्रह्मचर्य्य के बल से ही साधना की जा सकती है। यदि जीवन को पवित्रता तथा सुख से व्यतीत करना चाहते हो; यदि कर्मठ बनकर स्वर्गीय जीवन का आनन्द भोगना चाहते

हो ; यदि साहसी और उद्योगी बनना चाहते हो ; यदि कठिन से कठिन कार्य्य को सरलता से करना चाहते हो ; यदि उच्च और श्रेष्ठ बनना चाहते हो ; और यदि चाहते हो कि, संसार तुम्हारा यश गावे तो ब्रह्मचर्य धारण करो। जितनी भली-भली बातें हैं, सब ब्रह्मचर्य से ही सिद्ध होती हैं। जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, वे ब्रह्मचर्य के पालन करने में समर्थ नहीं रहे, और स्वास्थ्य अच्छा न होने से मनुष्य कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकता। वीर्य ही स्वास्थ्य की जान है। वीर्य ही दान, सम्पत्ति तथा राज्य से भी उत्तम वस्तु है ; वीर्य ही शारीरिक बल है ; वीर्य ही बुद्धि है ; वीर्य ही हमें बड़े-बड़े कार्य करने के हेतु साहस देता है। 12655

प्राय: देखने में आता है कि, मनुष्यों के बड़े-बड़े कार्यों से एक पैसा भी व्यर्थ निकल जाय तो वे बड़े चिन्तित होते हैं ; साधारण मनुष्य का यदि एक पैसा भी कोई ले ले, तो लाठी चल जाती है। परन्तु शोक है कि, हम इस अमूल्य रत्न, वीर्य को कोई परवा न करके उसे यों ही नष्ट कर डालते हैं। खोई हुई धन-सम्पत्ति पुन: लौटकर आ जाती है, परन्तु खोया हुआ वीर्य नहीं आने का।

हम सामने की जो दीवार देख रहे हैं, वह ईंट और चूने से मिलकर बनी है। चूने के बल से ईंटें आपस में कैसी जुड़ी हुई हैं ! और दीवार को कैसी सुन्दर बनाये हुए हैं ! यही दशा हमारे शरीर की है—अस्थि तथा मांस, वीर्य के बल से

इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि, शरीर बन गया है और सुन्दर लगता है। जिस प्रकार चूने के निकल जाने से दीवार की दशा अङ्ग-भङ्ग हो जाती है—ईंटें इधर-उधर गिरकर उसे कुरूप तथा निर्बल बना देती हैं, उसी प्रकार हमारा शरीर भी वीर्य के निकल जाने से अङ्ग-भङ्ग हो जाता है—कहीं मोटा और कहीं पतला हो जाता है, तथा निर्बल भी हो जाता है। दीवार का चूना यदि थोड़ा भी निकाल लिया जाय, तो बिना निकाले ही क्रमशः उसका और भी चूना झड़ने लगेगा, यही दशा वीर्य की भी है। यदि ज़ोर का पानी बरस गया तो समस्त दीवार गिर पड़ेगी, उसी प्रकार वीर्य के निकल जाने पर शरीर कठिन रोगों को सहन न करके शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है। अस्वाभाविक रूप से वीर्य का निकालना तो एकदम रोगों को निमन्त्रण देना और शरीर को नष्ट करना है।

एक ग्रामीण लोकोक्ति है कि, "सवेरे का भूला हुआ सन्ध्या को भी लौट आवे तो भूला हुआ नहीं कहा जा सकता!" बस, अब भी सावधान हो जाना उत्तम है।

हमको बचपन की अपेक्षा युवावस्था में अधिक सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट होना चाहिये, परन्तु दशा बिलकुल विपरीत देखने में आती है। हम यौवनावस्था के प्रथम ही वृद्ध पुरुषों का सा आकार धारण कर लेते हैं। आज-कल भारत की अवनति का एक प्रधान कारण यह भी है। इस कारण वीर्य की रक्षा करना हमारा परम उद्देश्य होना चाहिये।

३९—विश्राम।

विश्राम करना भी हम को भूल न जाना चाहिये। रात्रि को सोने से समस्त दिन की थकावट निकल जाती है। कोई-कोई ऐसा भी विचार करते हैं कि, जितना परिश्रम किया जाय, यदि वैसे ही पौष्टिक पदार्थ खा लिये जायें, तो परिश्रम का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, चाहे कितना परिश्रम कर लो। उनकी यह पक्की भूल है। परिश्रम करने का प्रभाव विश्राम करने से निकलता है। परिश्रम मनुष्य उतना कर सकता है, जितना करना उचित है, नहीं तो स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की सम्भावना है। इस प्रकार समझ लीजिये कि, यदि एक बैल को दिन भर खेत में जोता जाय, और चाहो कि, भले प्रकार खिला-पिलाकर उसे रात्रि में भी जोतें, तो वह नहीं जोता जा सकता। दिन भर जोते जाने के पश्चात् बैल कुछ देर विश्राम करके चारा खाते हैं। परिश्रम करके कुछ देर विश्राम करके पुनः भोजन करना चाहिये; परन्तु नियमित समय पर ही चाहिये।

बहुत से बुद्धिमानों की सम्मति है कि, मनुष्य के लिये ६ घण्टे और स्त्री के लिये ७ घण्टे सोना आवश्यक है। परन्तु सोना, परिश्रम करने की थकावट के ऊपर निर्भर है। बच्चों को अधिक सोने की आवश्यकता है। इस कारण उन्हें शीघ्र ही सो जाना चाहिये। छोटे-छोटे बच्चों को १२ घण्टे से अधिक

सोना चाहिये । मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य कर[illegible] [illegible] और सुन्दर से कम ८ घण्टे सोना उचित है, क्योंकि मस्तिष्क को [illegible] की सोने से ही पूरी होती है । विना स्वच्छ और सुन्दर चारपाई पर, खुली हुई वायु में, निश्चिन्तता से सोने से स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता ।

अँगरेज़ी में एक कहावत है कि:—

"Early to bed and early to rise,
make a man healthy, wealthy and wise"

तात्पर्य यह कि, दस बजे से (रात्रि को) प्रथम सो जाना और (प्रातःकाल) ४ बजे से प्रथम उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान् और बुद्धिमान् बनाता है ।

जो मनुष्य सूर्योदय के पश्चात् सोकर उठता है वह कभी बड़ा मनुष्य नहीं हो सकता । ऐसे मनुष्य प्रायः आलसी होते हैं और दीर्घायु को नहीं पा सकते । सूर्योदय के प्रथम ही स्नान इत्यादि आवश्यकीय कार्यों से निश्चिन्त हो जाना चाहिये । सूर्योदय के प्रथम उठने से बल, बुद्धि और विद्या बढ़ती है तथा समस्त दिन चित्त प्रसन्न रहता है । जो मनुष्य इस नियम को पालन करेगा, वह समस्त जीवन पर्यन्त दुःख न उठावेगा ।